भारतीय उच्च शिक्षा : मुद्दे और विकल्प

डॉ0 गीता यादव,

अध्यक्ष–राजनीति विज्ञान विभाग,
तिलकधारी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जौनपुर (उ.प्र.)

प्रत्येक देश की प्रगति वहाँ की उच्च शिक्षा की सार्थकता और सोद्देश्यता पर निर्भर है। उचित व मूर्त उद्देश्यों के निर्धारण में उदासीनता के कारणों का विश्लेषण करना आवश्यक है। क्योंकि उच्च शिक्षा के स्वरूप का सामाजिक समस्याओं से कोई सम्बन्ध नहीं है। वर्तमान समय में उच्च शिक्षा की आवश्यकता, अध्ययन की विषय–वस्तु व अध्ययन मुक्तता पर विशेष बल देने की है, जिनसे प्रवेश–विधि एवं छात्र संख्या की समस्या का समाधान मिल सके।

प्रायः यह कहा जाता है कि हमारी उच्च शिक्षा संस्थाएँ, जड़, स्थिर एवं पारम्परिक हो गई हैं। दोष शायद उनके संगठन में है, जहाँ अधिकारी वर्ग में सारी सत्ता केन्द्रित हो गई है। अतः संगठन के स्तर और संस्थाओं की विभिन्न कार्यकारी इकाइयों की भूमिका का अधिक गहराई से मूल्यांकन आवश्यक है।

राजकीय सहायता ने उच्च शिक्षा संस्थाओं की स्वायत्तता पर गहरा आघात किया है। परिणामस्वरूप उच्च शिक्षा के स्तर पर न स्वायत्तता रह गई है, और न स्वतन्त्रता। ये संस्थाएं सरकारी दफ्तर की तरह कार्य कर रही हैं। इसलिए यह निर्णय करने की आवश्यकता है कि स्वायत्तता और स्वतन्त्रता को बनाये रखने के लिए इन संस्थाओं के स्वरूप में क्या परिवर्तन अपेक्षित है।

उच्च शिक्षा संस्थाओं का प्रमुख उत्तरदायित्व अध्ययन और अनुसंधान माना गया है। अध्ययन की स्थिति तो असंतोषजनक है ही, अनुसंधान भी प्रायः निरर्थक और अनुपयुक्त है। इस दृष्टि से अनुसंधान के उद्देश्य और आवश्यकताओं का निर्णय करना आवश्यक है। फिर देखना है कि हमारी संस्थाओं में अनुसंधान कार्य की क्या स्थिति है। अन्त में उन कारणों की जानकारी प्राप्त करनी चाहिए जो अनुसंधान की गुणात्मकता और सार्थकता पर प्रभाव डालते हैं।

सामान्यतः यह माना जाता है कि माध्यमिक शिक्षा के उपरान्त ही उच्च शिक्षा का प्रारम्भ होता है जिसका आयोजन महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों तथा उच्च शिक्षण संस्थाओं में किया जाता है। इस दृष्टिकोण से उच्च शिक्षा के अन्तर्गत उन सभी शिक्षण संस्थाओं को रखा जा सकता है जिनका कार्यक्रम माध्यमिक स्तर से अधिक विकसित है। फलतः उच्च शिक्षा के अन्तर्गत निम्न प्रकार की शिक्षण संस्थाएं मानी जा सकती है–

1– महाविद्यालय (स्नातकीय, स्नातकोत्तर तथा विशिष्ट पाठ्यक्रमों से युक्त अध्यापक–प्रशिक्षण, विधि–शिक्षा, कृषि–शिक्षा आदि।)

2– विश्वविद्यालय (सामान्य तथा विशिष्ट)।

3– विशिष्ट शिक्षण संस्थान।

4– अनुसंधान केन्द्र।

उच्च शिक्षा का जो स्वरूप आज हमारे सामने है उसमें उच्चता का तात्पर्य प्रायः माध्यमिक स्तर के

ऊपर की शिक्षा से होती है। माध्यमिक शिक्षा को ही क्यों मापदण्ड माना गया, और उसके ऊपर वाली शिक्षा को ही क्यों उच्च शिक्षा का नाम दिया गया? इस प्रकार के प्रश्नों का उत्तर देने के लिए हमें उच्च शिक्षा के उद्देश्यों पर विचार करना पड़ेगा। यहाँ यह बात बता देना भी अप्रासंगिक न होगा कि विश्वविद्यालयी अथवा उच्च शिक्षा की परिकल्पना भारतीय शिक्षा परम्परा में पर्याप्त प्राचीन है। नालन्दा, तक्षशिला, पाटलिपुत्र आदि विश्वविद्यालयों की ऐतिहासिकता साक्ष्याधारित है। परंतु आधुनिक उच्च शिक्षा के स्वरूप का निर्धारण काफी अर्वाचीन है, जिसका आरम्भ 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से माना जा सकता है। पिछली दो शताब्दियों में उच्च शिक्षा के स्वरूप में अनेक परिवर्तन हुए है, फिर भी उनके मूलभूत प्रतिमानों में कोई अंतर नहीं आया, इसके कुछ विशिष्ट कारण थे।

ऐतिहासिक कारण

सन् 1857 तक भारत में किसी विश्वविद्यालय की स्थापना नहीं हुई। तब तक उच्च शिक्षा के लिए कुछ महाविद्यालय ही स्थापित थे, जिनके मूल में अंग्रेजी शासकों का अपना स्वार्थ था। एक तो वे भारतीय धर्म, रीति–रिवाज और सामाजिक नियमों की खोज करना और उन्हें जानना चाहते थे और दूसरे कुछ भारतीयों को धीरे–धीरे पश्चिमी संस्कृति के अनुरूप बनाना चाहते थे। जिससे आंग्ल शासन की नींव यहाँ सुदृढ़ रह सके। कलकत्ता मदरसा, बनारस संस्कृत कालेज तथा फोर्ट विलियम कॉलेज इन्हीं विचारों की देन थे। सन् 1857 में वुड के घोषणा पत्र में भी यह बात स्पष्ट की गयी थी कि ''भारतीयों के विचारों में उदारता का विकास करने के लिए उदार शिक्षा की व्यवस्था उच्च स्तर पर भी की जानी चाहिए।'' परिणामस्वरूप सन् 1857 में एक विश्वविद्यालय अधिनियम बनाया गया जिसके अन्तर्गत विश्वविद्यालय के अनुरूप कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में विद्यालयों की स्थापना की गयी।

उपर्युक्त विवरण से कुछ बातें स्पष्ट हैं, यथा–

(क) हमारे देश में आजकल के विश्वविद्यालयों की स्थापना आंग्ल शासन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हुई थी। फलतः उच्च शिक्षा का स्वरूप निर्धारण प्रायः शासक वर्ग के ही हाथ में रहा। समाज के सामान्य परंतु बौद्धिक रूप से सक्षम वर्ग का इस शिक्षा के आयोजन पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा और न इसके विकास में सामाजिक, सांस्कृतिक अथवा राष्ट्रीय आवश्यकताओं को ही कोई विशेष महत्व दिया गया।

(ख) विश्वविद्यालयों का प्रारम्भिक रूप केवल परीक्षण केन्द्रों के रूप में ही था। अतः उच्च शिक्षा मूलतः उपाधि–वितरण का माध्यम रही जिससे उसका प्रमुख आग्रह उपाधियों पर केन्द्रित हो गया। अध्यापन, अनुसंधान और व्यक्तित्व के विकास जैसे उदात्त उद्देश्य गौड़ रहे।

(ग) विश्वविद्यालयी शिक्षा प्रमुखतः सम्पन्न वर्ग तक ही सीमित रही और प्रभाव यह पड़ा कि समस्त शैक्षिक व्यवस्था में विश्वविद्यालय, अधिक स्थिर अपरिवर्तित और अप्रगतिशील संस्थाओं के रूप में कार्य करते रहे।

(घ) समाज के उच्च वर्ग में संचार प्राप्ति का साधन होने के कारण उच्च शिक्षा का प्रभाव समाज के मध्य एवं निम्न वर्ग पर नहीं पड़ सका। इस प्रकार ये उच्च शिक्षा केन्द्र समाज के लिए आदरणीय संस्थाएं तो बने रहे पर सम्पूर्ण समाज के लिए उपयोगी नहीं बन पाये।

सैद्धान्तिक कारण

प्रश्न यह है कि उच्च शिक्षा के उद्देश्य क्या है? विश्वविद्यालयों या महाविद्यालयों की स्थापना क्यों की जाती है ? इस विषय में विश्व भर के

विचारक प्रायः एकमत है कि उच्च शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य ''ज्ञान के उस उदात्त रूप का अन्वेषण करना है, जिससे मानव संस्कृति के प्रत्येक क्षेत्र में विकास और उन्नति हो सके।'' अर्थात् उच्च शिक्षा में ज्ञान का अन्वेषण तथा सांस्कृतिक उदात्तीकरण–ये दो महत्वपूर्ण प्रकार्य है। प्राचीन परम्परा में ज्ञानप्राप्ति दो कारणों से महत्व दिया जा रहा है। प्रथमतः ज्ञान अपने में ही लक्ष्य है। ''ज्ञान, ज्ञान के लिए'' का सिद्धान्त इसी धारणा की ओर संकेत करता है। दूसरे ज्ञानी व्यक्ति को समाज में अधिक आदर की दृष्टि से देखा जाता रहा है।

यदि भारतीय उच्च शिक्षा के क्षेत्र में ज्ञानार्जन के उद्देश्य का मूल्यांकन किया जाय तो स्पष्ट हो जायेगा कि हमारे विश्वविद्यालय इन नवीन प्रवृत्तियों से अभी तक अछूते हैं। ''ज्ञान, ज्ञान के लिए'' की पुरातन विचारधारा अभी भी सशक्त है। यही कारण है कि उच्च शिक्षा के क्षेत्र में प्रवेश करने वाला छात्र डिग्रियाँ बटोरने में लग जाता है। अनुसंधान के क्षेत्र तक में उपाधि प्राप्ति की। यह प्रवृत्ति बलवती बनी हुई है। नौकरियाँ इसी के बल पर मिलती है और अध्यापकगण इसी दृष्टिकोण से अपना कार्यों का सम्पादन करते हैं।

उच्च शिक्षा का दूसरा उद्देश्य जो हेदरिंगटन ने प्रस्तुत किया है वह है, सांस्कृतिक उन्नयन। इस उद्देश्य पर विचार करने से पूर्व हम पहले सांस्कृतिक उन्नयन का तात्पर्य समझ लें और फिर यह जानने का प्रयास करें कि हमारी उच्च शिक्षा में सांस्कृतिक उन्नयन के लिए क्या प्रयत्न हुए है, अथवा हो रहे है।

संस्कृति क्या है ? इस विषय का विवेचन हम शिक्षा की सामाजिक समस्या विषयक अध्ययन में कर चुके है। फिर भी यहाँ मोटे तौर पर यह बतला देना उचित है कि संस्कृति से किसी समाज में जीवन–यापन के लिए उन आदर्श त्तवों का बोध होता है जो उस समाज में रहने वाले सदस्यों के व्यवहार और मान्यताओं में अभिव्यक्त होते है। यदि संस्कृति हमारे व्यवहार और मान्यताओं का सुविकसित रूप है तो स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि उच्च शिक्षा केन्द्रों ने हमारे व्यवहारिक और वैचारिक जीवन को कहाँ तक प्रभावित किया है ? उन्नयन तब तक नहीं हो सकता जब तक प्रभाव सक्रिय न हो और प्रभाव क्षेत्र जितना व्यापक होगा उन्नयन भी सामाजिक जीवन को उतने ही व्यापक रूप से प्रभावित करेगा। इस विषय में यह जान लेने पर कि संस्कृति की प्रमुख विशेषता उसकी क्रियात्मक प्रभावशीलता है, इस बात को जानने की इच्छा, स्वभावतः जाग्रत हो सकती है कि प्रभावशीलता को क्रियात्मक क्यों कहा गया है।

हमारे विश्वविद्यालयों और संस्थानों में 21वीं सदी की जरूरतों के अनुसार अपेक्षित सुधारों पर कोई राष्ट्रव्यापी बहस पिछले कई वर्षो में नहीं सुनी गयी। किन्तु हाल ही में केन्द्रीय मानव संसाधन मंत्री कपिल सिब्बल द्वारा यशपाल कमेटी की सिफारिशों की 100 दिनों के भीतर लागू करने के फैसले से उच्च शिक्षा में परिवर्तन की आशा जगी है। 'राष्ट्रीय ज्ञान आयोग' की रिर्पोट पर सत्तारूढ़ यू0पी0ए0 सरकार के मुख्य घटक कांग्रेस की सहमति न होने पर तत्कालीन मानव संसाधन मंत्री अर्जुन सिंह ने 28 फरवरी 2008 को प्रो0 यशपाल की अध्यक्षता में 24 सदस्यीय उच्च समीक्षा समिति का गठन कर दिया। जिसे मुख्यतः यूजीसी और एआईसीटीई के क्रियात्मक पहलू की जाँच करनी थी।

यशपाल कमेटी ने अपनी 67 पृष्ठों की रिर्पोट में 19 सिफारिशें की, जिन्हें तुरंत लागू नहीं किया जा सकता था। जिसका मुख्य सुझाव यूजीसी, एआईसीटीई, एमसीआई जैसी 13 नियामक संस्थाओं को समाप्त कर चुनाव आयोग सेबी, इरडा और ट्राई की तरह एक सर्वसमाहित 'नेशनल कमीशन फॉर हायर एजूकेशन एण्ड रिसर्च' (एनसीएचईआर) का गठन किया जाय।

जिसके लिए संविधान संशोधन की जरूरत पड़ेगी।

'एनसीएचईआर' कमेटी ने डीम्ड यूनिवर्सिटियों की संख्या में निरन्तर वृद्धि पर एतराज किया है और शीघ्र ही उस पर रोक लगाने का सुझाव दिया। कमेटी ने देश के 1500 कॉलेजों का दर्जा बढ़ाकर उन्हें विश्वविद्यालय बनाने का भी सुझाव दिया है, जो उच्च शिक्षा में एक व्यापक परिवर्तन को जन्म दे सकता है। दूसरा महत्वपूर्ण सुझाव देश के सभी विश्वविद्यालय में प्रवेश हेतु जीआरई की तरह एक राष्ट्रीय परीक्षण योजना शुरू करना, जो वर्ष में कई बार प्रवेश परीक्षा करा सके।

बहरहाल, यह रिर्पोट हमारी समूची उच्च शिक्षा की 150 वर्ष पुरानी इमारत के ढाँचें में परिवर्तन चाहती है। जिससे विभिन्न संगठनों को नाराजगी हो सकती है। अतः यह रिर्पोट आशा और आंशका दोनों का संचार करती है। उच्च शिक्षा प्रणाली 150 वर्षो से सरकारों, समाज एवं उद्योग जगत की निरन्तर उपेक्षा का सामना करती हुई एक जड़–जंगम ढाँचे में बदल चुकी है। जहाँ अधिकतर लोगों का निहित स्वार्थ इसी में है कि यथास्थिति बनी रहे। राजनीतिक दलों, शिक्षक–कर्मचारियों संघों, छात्र संगठनों एवं नौकरशाही सभी के लिए सुविधाजनक है।

अब तक पिछले 62 वर्षो में देश में आर्थिक, सामाजिक ढाँचे में व्यापक परिवर्तन हुए है। स्वाधीनता प्राप्ति तक उच्च शिक्षा अधिकांशतः उच्च, मध्यम वर्ग एवं तथाकथित उच्च जातियों तक सीमित थी, किन्तु आज समाज का हर वर्ग उच्च शिक्षा के माध्यम से अपनी–अपनी सामाजिक व आर्थिक स्थिति में सुधार करने की सोच रहा है, किन्तु करोड़ों ग्रेजुएड व पोस्टग्रेजुएड युवा रोजगार के बाजार में प्रवेश करते है तो उन्हें पता चलता है कि ज्यादातर (लगभग 75 प्रतिशत) को नियोक्ता रोजगार के योग्य नहीं मानते, तो क्या यह काफी नहीं है कि उच्च शिक्षा का 150 वर्ष पुराना ढाँचा अब ज्यादा दिन चलने वाला नहीं है। अभी हाल ही में सीआईआई ने एक एजेडा तैयार किया है जिसमें 2022 अर्थात् 75वें स्वाधीनता वर्ष में भारत विश्व की महाशक्ति कैसे बन सकता है इसके लिए शिक्षा के क्षेत्र में जो लक्ष्य तय किया है, उसमें 2022 तक 70 करोड़ ऐसे युवा तैयार करना, जिन्हें विश्व में कहीं भी रोजगार मिल सके। इनमें 20 करोड़ ऐसे जो विश्वविद्यालयों के स्नातक होंगे और 50 करोड़ किसी न किसी कला–कौशल में पारंगत है।

शिक्षा भारतीय संविधान की समवर्ती सूची का विषय है, अतः उच्च शिक्षा में सुधार एक राष्ट्रीय एजेंडा है जो 21वीं सदी के भारत की सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक दशा निर्धारित करेगा। उच्च शिक्षा में गुणात्मक परिवर्तन होना चाहिए, क्योंकि गिने–चुनें संस्थानों को छोड़ दे तो हमारे ज्यादातर उच्च शिक्षा केन्द्रों में सम्पूर्ण वातावरण ही शिक्षा विरोधी है। यहीं कारण है कि मेधावी छात्रों को शिक्षण का पेशा अब आकर्षित नहीं करता। वास्तव में अब विश्वविद्यालयों में प्रतिभा नहीं, निष्ठा का राज है। वास्तविकता यह कि विश्वविद्यालय में अपनी साख बचाने के लिए गुरू ऐसे शिष्य बनाते हैं जो समय आने पर उनके गुर्गे के रूप में कार्य करें। फिर नियुक्तियों में राजनीतिक हस्तक्षेप, धर्म, जातिवाद, परिवाद आदि सामान्य बात है।

जहाँ तक कॉलेजों की बात है तो उनकी संख्या महाविद्यालय राज्य के अधीन है और इनमें नियुक्तियाँ उनके द्वारा गठित आयोगों द्वारा की जाती है। जहाँ भ्रष्टाचार चरम सीमा पर है, जो अपने आप में शोध का विषय है। फिर इन दिनों स्ववित्तपोषित महाविद्यालय कस्बे–कस्बे में खोले जा रहे है। शिक्षकों का मासिक वेतन इनमें सामान्यतः 4000–8000 रूपये तथा प्राचार्यो की 6000–10000 रूपये होती है। क्या ऐसी दुकानों से उच्च शिक्षा की गुणवत्ता वापस लायी जा सकती है।

वस्तुतः विश्वविद्यालय के सर्वोच्य पद यानी कुलपति की गरिमा अब समाप्त हो गई है। राज्य सरकारों के अधीन विश्वविद्यालयों में उनकी स्थिति अत्यत्न दयनीय है। नेताओं और नौकरशाहों के पीछे चक्कर काटने वाले कुलपतियों को देखकर यह स्वप्न लगता है कि कभी आचार्य नरेन्द देव, राधाकृष्णनन और गंगानाथ झा जैसी विभूतियां इस पद पर सुशोभित थी। वस्तुतः इस पद की चयन प्रक्रिया में भी पारदर्शिता का अभाव है। आज राज्यपाल की पृष्ठभूमि राजनीतिक है, इसलिए उनके द्वारा नियुक्त कुलपति का पद भी अब अकादमिक नहीं, राजनीति माना जाता है।

यूरोप में कुलपति, डीन और विभागाध्यक्ष जैसे पद मात्र एक औपचारिक प्रशासनिक पद है। जिन पर प्रोफेसरों की वरिष्ठता के अनुसार बारी–बारी से नियुक्ति होती रहती है। इसलिए प्रोफेसर की नियुक्ति में सख्ती बरती जाती है। भारत में डीन व विभागाध्यक्ष की नियुक्ति तो अब वरिष्ठता क्रम में होती है, किन्तु कुलपति की नहीं। यह कैसा विरोधामास है कि एक तरफ सरकार अधिक विश्वस्तरीय संस्थान खोलने की बात करती है। वहीं दूसरी तरफ ऐसी नीतियाँ अपना रही है कि उसे उच्च शिक्षा से पूरी मुक्ति मिल जायें। विशुद्ध मुनाफा कमाने ''डीम्ड यूनिवर्सिटी'' खोलने की छूट इसके प्रत्यक्ष उदाहरण है। भारतीय निवेशकों के साथ अब विदेशी निवेशकों का भी भारत में अपने शिक्षा केन्द्र खोलने की अनुमति दे रहे है। अब जो कल तक होटल चलाते थे या शराब बेचते थे, वे शिक्षा के क्षेत्र में धन लगाकर रूपये लूट रहे है और शिक्षाविद् के रूप में समाज से प्रतिष्ठा अर्जित कर रहे हैं।

विश्वविद्यालयों से अपेक्षा की जाती है कि वे समाज का नेतृत्व करें। किन्तु आज समाज की प्रत्येक बुराई विश्वविद्यालय ग्रहण कर रहा है। पर ऐसा नहीं कि सब कुछ खत्म हो गया है, आज भी हमारे विश्वविद्यालय और कॉलेजों में ऐसे प्राध्यापक है, जो ईमानदारी से अपना काम कर रहे है। ऐसे लोगों को स्वयं आगे आना चाहिए। दुर्योग से शिक्षक संघ भी केवल तनख्वाह और सुविधाएं बढ़ाने तक सीमित हो गये है। हालांकि छठें वेतन आयोग से शिक्षक का एक बड़ा समूह (स्ववित्तपोषित को छोड़कर) संतुष्ट है। अतः उनका भी समाज के प्रति कुछ कर्तव्य बनता है। जिस तरह उत्तर प्रदेश में आई0ए0एस0 अधिकारियों के संगठन ने यह निश्चित किया कि तीन भ्रष्ट अधिकारियों को चिन्हित किया जायेगा। उसी प्रकार शिक्षक संगठन भी यह विश्वास दिलाये कि उच्च शिक्षा के माध्यम से इस देश की तकदीर बदल देंगे और 21वीं सदी में भारत एक महाशक्ति बनकर उभरेगा।

कई प्रोफेसरों ने अनेक वर्षों तक कक्षाएं नहीं लीं, बाद में वे केन्द्रीय मंत्री बने। क्या उन्हें शिक्षक संघों ने रोकने का प्रयास किया ? जो प्रोफेसर शोध करवाने के पैसे लेकर सम्पूर्ण शिक्षक समुदाय को कलंकित करते है, क्या उनके विरूद्ध आवाज उठाने की कोशिश की गई ? शिक्षक की एक गलती न केवल उसे और वर्तमान को बल्कि कई पीढ़ियों को बर्बाद करती है। अतः परिवर्तन के लिए जब तक शिक्षक समाज स्वयं आगे नहीं बढ़ेगा तब तक सरकारी प्रयत्न सफल नहीं होंगे। कमेटियां गठित होती रहेगी। किन्तु उनके सुझाव में बौद्धिक अपवाद से ज्यादा महत्व नहीं पा सकेगी।

21वीं सदी में उच्च शिक्षा की यह स्थिति होने का मुख्य कारण आजादी के बाद, जैसे ही लगा कि यह हम उच्च शिक्षा में पीछे जा रहे है, हमारे पास कम विश्वविद्यालय है, तो हमने कुछ केन्द्रीय विश्वविद्यालय बना दिये, कुछ राज्यों के विश्वविद्यालय बना दिये। सरकार ने इस पर नियंत्रण व जबाव देने के लिए अनुदान आयोग बना दिया। इसी प्रकार मेडिकल काउंसिल, अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद जैसी

विभिन्न संस्थाएं है, जिसे बनाकर सरकार जिम्मेदारी से मुक्त हो गई है, किन्तु उच्च शिक्षा धीरे–धीरे बाबुओं के हवाले हो गई। इसके नियत्रंक अधिक और शिक्षा कम हो गई। जबकि शिक्षा में शिक्षक की जबावदेही होनी चाहिए न कि बाह्म नियंत्रक की अतः विश्वविद्यालय को आत्मसंचालित होना चाहिए। उन्हे पशु समाज की तरह हांकने की जरूरत नहीं है, उन्हे सम्मान देने की आवश्यकता है।

वास्तव में विश्वविद्यालय वह है, जो ज्ञान के सागर में डुबकी लगाना सिखाए। कुछ बिल्डिंग बना देने से, साज–सज्जा का सामान रख देने, कुछ छात्रों की भर्ती कर लेने से विश्वविद्यालय नहीं बन जाते। दुनिया का कोई विश्वविद्यालय ऐसा नहीं है जो विविध विषयों की पढ़ाई न कराता हो, मानव के आसपास घटित होने वाली उन सभी विषयों की पढ़ाई विश्वविद्यालय में होनी चाहिए, जो जिंदगी को टुकड़ों में न बाँट सके। ज्ञान को टुकड़ों में नहीं बाँटा जा सकें। अतः 'अंतर–अनुशासनात्मक उपागम' के माध्यम से विभिन्न विषयों के प्रति आदान–प्रदान होना जरूरी है। जैसे–सौंदर्यशास्त्र के बिना आक्रिटेक्चर की कल्पना नहीं कर सकते। वैज्ञानिक विधियों के बिना समाजविज्ञानों/विषयों के वास्तविक ज्ञान तक नहीं पहुँचा जा सकता। अतः कला–विज्ञान सभी का अध्ययन साथ–साथ होना चाहिए। क्या एक वैज्ञानिक को नये विचार सिर्फ प्रयोगशाला में ही आते है ? पता नहीं कब कौन–सा विचार आ जाये, कौन जानता है? जैसे आइन्सटाइन को संगीत से ही अपने आविष्कार की प्रेरणा मिली थी।

सभी विषयों के बीच स्पष्ट पारदर्शी दीवार है। प्रत्येक अध्ययन का उद्देश्य विकास से है। इसलिए ज्ञान को मुक्त कीजिए। वैज्ञानिक भाषा में इसे एक कोशिका यानी 'सेल' से समझ सकते है। कोशिका शरीर की न्यूनतम इकाई है। उसके चारों ओर एक कोमल सी दीवार होती है, जो उसे सुरक्षा व विशिष्टता प्रदान करती है, बाह्म संसार से जुड़ने के लिए उसमें छेद होते है, क्योंकि न होने पर वह फैल ही नहीं सकती। सेल का विस्तार ही इस कोमल (पारदर्शी) दीवार की वजह से होता है। जिंदगी की शिक्षा यही कहती है, अपनी विशेषता को बचाये रखते हुए फैलते रहिए। यही विकास है।

इस लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु कुकुरमुत्तें की तरह उग रहे विश्वविद्यालयों पर रोक लगानी चाहिए। आज कोचिंग करने वाले विश्वविद्यालय चला रहे है तो शिक्षा का क्या हाल होगा कल्पना की जा सकती है। डाक्टर, इंजीनियर व प्रोफेसर बनने के लिए लोग 20–25 लाख रूपये दे रहे है, तो वे क्या करेंगे, स्वयं समझिये? शिक्षा (ज्ञान) पैसे से नहीं खरीदी जा सकती। यही हाल विदेशी विश्वविद्यालय का है, वे इस देश में मुनाफा कमाने की सोच रहे है, शिक्षा उनका गौंण उद्देश्य है। अतः इन्हें दुकान कहना उचित होगा विश्वविद्यालय नहीं। इसी प्रकार ''डीम्ड यूनिवर्सिटी'' वास्तव में गलत नहीं है, क्योंकि डीम्ड उसे कहते है जैसे कोई संस्थान अपने प्रयासों से एक संस्थान होते हुए भी जो एक विश्वविद्यालय की तरह काम कर रहा है। जैसे इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस बंगलूर। यह प्रक्रिया गलत नहीं है, बल्कि विभिन्न विधानसभाओं में एक्ट पास कराकर दुकानों की तरह विश्वविद्यालयों को खोलना गलत है। क्यों नहीं आईआईटीज, आईआईएम्स को विश्वविद्यालय बनाते जैसे अमेरिका का एम आई टी भी पहले इसी तरह का इंस्टीट्यूट था। जहाँ से प्रसिद्ध अर्थशास्त्र के नोबेल लारिएट निकल रहे है चर्चित भाषाशास्त्री 'नोअम चोम्स्की' वहीं पढ़ाते है।

शायद ही आज कोई इससे असहमत होगा कि मौजूदा चुनौतियों के मद्देनजर हमें अपनी उच्च शिक्षा पद्धति में बदलाव करना चाहिए। जमाना जिस गति से बढ़ रहा है, उच्च

शिक्षा का उस गति से विकास नहीं हुआ है। अतः इसमें सुधार हेतु विचार–विमर्श कर उच्च शिक्षा नीति बनायी जाये। शिक्षा समवर्ती सूची का विषय है अतः राज्यों से विचार–विमर्श करने के उपरान्त ही परिवर्तन हो, क्योंकि 100 करोड़ से ज्यादा आबादी वाले देश में विभिन्न संस्कृतियां व परम्परायें हैं, सैकड़ों भाषाएं–बोलियाँ ऐसे में उच्च शिक्षा (विश्वविद्यालयी व्यवसाय) का अन्तर्विषयक विकास आवश्यक है, जो भारतीय संविधान की मूल भावना 'विविधता में एकता' के भी विरूद्ध नहीं होगा। शिक्षा की प्राथमिक व माध्यमिक जिम्मेदारी अभी पूर्ण रूप से राज्य चला रहे है। भारत देश में विदेशी विश्वविद्यालय नहीं चल पायेगा। यहाँ की स्थानीय समस्याओं जरूरतों को समझना आवश्यक है। क्योंकि अत्यधिक निजीकरण व विदेशी विश्वविद्यालयों के कारण शिक्षा की एकरूपता समाप्त हो जाएगी। इससे भारत की गरीब जनता भी उच्च शिक्षा से वंचित हो जायेगी। इसलिए जरूरत यह है कि वर्तमान ढाँचें को सुधारा जाए, न कि बदला जाए। यूजीसी, एआईसीटीई जैसी संस्थाओं की स्वायत्त को मजबूत करना चाहिए और इनके कामकाज में राजनीतिक दखल, मुनाफाखोरी, भ्रष्टाचार व प्रशासनिक दबाव का दखल नहीं होना चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1– ''भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ''–पी0डी0 पाठक, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा–2।

2– ''शिक्षा के आधारभूत तत्व'–डॉ0 अमिता वाजपेई, डॉ0 निधि बाला, डॉ0 सावित्री शुक्ला, आलोक प्रकाशन, लखनऊ, इलाहाबाद।

3– ''भारतीय शिक्षा की समस्याएँ तथा प्रवृत्तियाँ'' सुबोध अदावाल और माधवेन्द्र उनियाल, उ0प्र0 हिन्दी संस्थान (हिन्दी ग्रन्थ अकादमी प्रभाग), लखनऊ।

4– शाह, ए.बी. :'हायर एजूकेशन इन इंडिया' में अय्यर, एस.वी. द्वारा उद्धृत।

5– व्यायोत्सकी, एल.एस. : थॉट एण्ड लैंग्वेज, एम.आई.टी. प्रेस, कैम्ब्रिज, मैस0, 1962।

6– समाचार पत्र : अमर उजाला, दैनिक जागरण, हिन्दुस्तान, आज।

7– पत्रिकाएं : इंडिया टुडे, समसामयिकी, कुरूक्षेत्र, पांचजन्य, रोजगार समाचार।

Copyright © 2017, Dr. Geeta Yadav. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.